

Chapter सत्ताईस

देवपूजा विषयक श्रीकृष्ण के आदेश

इस अध्याय में भगवान् ने क्रिया-योग अर्थात् देवपूजा की विधि के विषय में व्याख्या दी है।

भगवान् के अर्चाविग्रह की पूजा करने से मन में स्वतः शुद्धता तथा संतोष आता है। इस तरह यह समस्त वांछित लाभों का स्रोत है। यदि मनुष्य देवपूजा में नहीं लगता, तो वह भौतिक इन्द्रियतृप्ति के प्रति आकृष्ट होता रहता है और उसकी बुरी संगति छूटने की कोई आशा नहीं रहेगी। भगवान् ने सात्वत शास्त्रों के नियमों में प्रामाणिक अर्चाविग्रह रूप अपनी पूजा की विधि के विषय में आदेश दिये हैं। ब्रह्मा, शिव, नारद, व्यास तथा अन्य मुनियों ने भगवान् द्वारा बतलाई गई इसी विधि की संस्तुति की है, जो सभी वर्णों तथा आश्रमों के लोगों को, जिनमें स्त्रियाँ तथा शूद्र भी सम्मिलित हैं, सर्वाधिक उपयोगी है।

देवपूजा अर्थात् अर्चन की तीन विधियाँ हैं, जो या तो मूल वेदों, गौण तंत्रों या इन दोनों के संमेल पर आधारित हैं। देव की मूर्ति, भूमि, अग्नि, सूर्य, जल तथा पूजक का हृदय—ये सभी देव की उपस्थिति के असली स्थान हैं। जिस देव को पूजना हो, उसका निर्माण जिन आठ में से किसी एक वस्तु से किया जा सकता है वे हैं—पत्थर, काष्ठ, धातु, मिट्टी, रंग, बालू (भूमि पर बिछाई हुई), मन या रत्न। इन श्रेणियों का उपविभाजन अस्थायी तथा स्थायी में किया गया है।

पूजा-विधि का विस्तार इस प्रकार है : भक्त को शरीर से तथा मंत्रों के उच्चारण द्वारा स्नान करना चाहिए और तब दिन की नियत सन्धियों पर गायत्री का उच्चारण करना चाहिए। उसे पूर्व या उत्तर

अभिमुख होकर आसन ग्रहण करना चाहिए या फिर अर्चाविग्रह के समक्ष ही बैठना चाहिए और साफ करना चाहिये। तब उसे अर्चाविग्रह को स्नान कराना चाहिए। फिर वस्त्र तथा आभूषण भेंट करके पूजा के पात्रों तथा अन्य सामग्रियों पर जल छिड़कना चाहिए। तब अर्चाविग्रह के चरणों को धोने के लिए जल (अर्ध) चढ़ाना चाहिए, मुख धोने के लिए जल, सुगन्धित तेल, अगुरु, दीपक, फूल तथा विविध पकवान भेंट करने चाहिए। इसके बाद भगवान् के सेवकों, अंगरक्षकों, उनकी प्रिया-शक्तियों तथा गुरुओं की तत्सम्बन्धी मूल मंत्रों का उच्चारण करके पूजा करनी चाहिए। पूजक को चाहिए कि पुराणों आदि से स्तुतियाँ करे, साष्टांग प्रणाम करे, वर माँगे और भगवान् पर चढ़ाई गई माला के बचे अंश धारण करे।

इस देव अर्चन-विधि में सुन्दर मन्दिर बनवाकर अर्चाविग्रह की उचित स्थापना सम्मिलित है। साथ ही जुलूस (यात्रा) तथा अन्य उत्सव भी मनाये जाँय। इस तरह अहैतुकी भक्ति द्वारा श्री हरि की पूजा करने से मनुष्य को उनके चरणकमलों की शुद्ध भक्ति प्राप्त होती है। किन्तु जो व्यक्ति अपने द्वारा या अन्यो द्वारा अर्चाविग्रह पर या ब्राह्मण को दान में दी गई सम्पत्ति को चुराता है उसे अगले जन्म में मलभक्षी कीट के रूप में जन्म लेना होगा।

श्रीउद्धव उवाच

क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ।

यस्मात्त्वां ये यथार्चन्ति सात्वताः सात्वतर्षभ ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-उद्धवः उवाच—श्री उद्धव ने कहा; क्रिया-योगम्—संस्तुत क्रिया-विधि; समाचक्ष्व—बतलाइये; भवत्—आपकी; आराधनम्—अर्चाविग्रह पूजा; प्रभो—हे प्रभु; यस्मात्—किस रूप पर आधारित; त्वाम्—तुमको; ये—जो; यथा—जिस भाँति से; अर्चन्ति—पूजते हैं; सात्वताः—भक्तगण; सात्वत-ऋषभ—हे भक्तों के स्वामी।

श्री उद्धव ने कहा : हे प्रभु, हे भक्तों के स्वामी, आप कृपा करके मुझे अपने अर्चाविग्रह रूप में अपनी पूजा की नियत विधि बतलायें। अर्चाविग्रह की पूजा करने वाले भक्तों की क्या क्षमताएँ होती हैं? ऐसी पूजा किस आधार पर स्थापित है? तथा पूजा की विशिष्ट विधि क्या है?

तात्पर्य : भगवद्भक्त अपने नियत कर्मों के अतिरिक्त मन्दिर में अर्चाविग्रह रूप में भगवान् की नियमित पूजा करते हैं। ऐसी पूजा शरीर को भोगने की काम-वासना तथा इस काम-वासना से उत्पन्न भौतिक पारिवारिक आसक्ति दोनों से हृदय विमल करने के लिए प्रबल शक्ति से कार्य करती है। किन्तु

अर्चाविग्रह पूजा की विधि प्रभावशाली हो इसके लिए प्रामाणिक विधि अपनानी होती है। इसलिए अब उद्धवजी भगवान् से इस विषय में पूछ रहे हैं।

एतद्वदन्ति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् ।
नारदो भगवान् व्यास आचार्योऽङ्गिरसः सुतः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; वदन्ति—कहते हैं; मुनयः—मुनिजन; मुहुः—बारम्बार; निःश्रेयसम्—जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; नारदः—नारद मुनि; भगवान् व्यासः—श्रील व्यासदेव; आचार्यः—मेरे गुरु; अङ्गिरसः—अंगिरा का; सुतः—पुत्र।

सारे मुनि बारम्बार घोषित करते हैं कि ऐसी पूजा से मनुष्य जीवन में बड़े-से-बड़ा सम्भव

लाभ मिलता है। नारद मुनि, महान् व्यासदेव तथा मेरे अपने गुरु बृहस्पति का यही मत है।

निःसृतं ते मुखाम्भोजाद्यदाह भगवानजः ।
पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान्भवः ॥ ३ ॥
एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च सम्मतम् ।
श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

निःसृतम्—निकला; ते—आपके; मुख-अम्भोजात्—कमल-मुख से; यत्—जो; आह—कहा; भगवान्—महान् स्वामी; अजः—स्वतःजन्मे ब्रह्म; पुत्रेभ्यः—अपने पुत्रों द्वारा; भृगु-मुख्येभ्यः—भृगु आदि; देव्यै—देवी पार्वती से; च—तथा; भगवान् भवः—शिवजी ने; एतत्—यह (पूजा-विधि); वै—निस्सन्देह; सर्व-वर्णानाम्—सारे वर्णों; आश्रमाणाम्—तथा आश्रमों द्वारा; च—भी; सम्मतम्—स्वीकृत; श्रेयसाम्—जीवन में विभिन्न लाभों का; उत्तमम्—सर्वश्रेष्ठ; मन्ये—मैं मानता हूँ; स्त्री—स्त्रियों के लिए; शूद्राणाम्—तथा निम्न श्रेणी के श्रमिकों के लिए; च—भी; मान-द—हे वदान्य प्रभु।

हे वदान्य प्रभु, अर्चाविग्रह की इस पूजा-विधि के आदेश सर्वप्रथम आपने अपने कमलमुख से दिये। तब ब्रह्माजी ने इन्हें भृगु इत्यादि अपने पुत्रों को दिया और शिवजी ने अपनी पत्नी पार्वती को दिया। यह विधि सभी वर्णों तथा आश्रमों द्वारा स्वीकार की जाती है और उनके उपयुक्त है। इसलिए मैं अर्चाविग्रह के रूप में आपकी पूजा को, स्त्रियों तथा शूद्रों तक के लिए समस्त आध्यात्मिक अभ्यासों में अत्यन्त लाभप्रद मानता हूँ।

एतत्कमलपत्राक्ष कर्मबन्धविमोचनम् ।
भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; कमल-पत्र-अक्ष—हे कमलनयन प्रभु; कर्म-बन्ध—भौतिक कार्य के बन्धन से; विमोचनम्—मोक्ष का साधन; भक्ताय—आपके भक्तों से; अनुरक्ताय—अत्यन्त अनुरक्त; ब्रूहि—कृपया कहें; विश्व-ईश्वर—ब्रह्माण्ड के सारे प्रभुओं के; ईश्वर—हे परमेश्वर।

हे कमलनयन, हे ब्रह्माण्ड के सारे ईश्वरों के ईश्वर, कृपया अपने इस भक्त-दास को कर्म-बन्धन से मोक्ष का साधन बतलायें।

श्रीभगवानुवाच

न ह्यन्तोऽनन्तपारस्य कर्मकाण्डस्य चोद्धव ।
सङ्क्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; न—नहीं है; हि—निस्सन्देह; अन्तः—छोर; अनन्त-पारस्य—असीम का; कर्म-काण्डस्य—पूजा करने की वैदिक संस्तुतियाँ; च—तथा; उद्धव—हे उद्धव; सङ्क्षिप्तम्—संक्षेप में; वर्णयिष्यामि—बतलाऊँगा; यथा-वत्—उपयुक्त ढंग से; अनुपूर्वशः—उपयुक्त क्रम से।

भगवान् ने कहा : हे उद्धव, अर्चाविग्रह पूजा करने के लिए इतने वैदिक उपाय हैं कि उनका कोई अन्त नहीं है; इसलिए मैं यह विषय तुम्हें संक्षेप में एक-एक करके बतलाऊँगा।

तात्पर्य : कर्म-काण्ड पूजा की विविध वैदिक विधियों का द्योतक है जिनका अन्त भगवान् की अर्चाविग्रह पूजा में होता है। जिस तरह इन्द्रियतृप्ति तथा भौतिक वैराग्य के साधन असंख्य हैं, उसी तरह वैकुण्ठ में भगवान् द्वारा भोगी जाने वाली दिव्य लीलाएँ तथा गुण भी असंख्य हैं। भौतिक जगत में पुण्य की धारणाएँ तथा शुद्धि की जो विधियाँ हैं, वे परब्रह्म को स्वीकार किये बिना, परस्पर मेल नहीं खातीं क्योंकि उनको जाने बिना मनुष्य के लिए जानने लायक जरूरी बातों को जान पाना सम्भव नहीं है। यद्यपि प्रायः सारे लोग पूजा की विविध विधियों में लगे रहते हैं, किन्तु अब भगवान् इस विषय का संक्षेप में वर्णन करेंगे कि उनके अर्चाविग्रह रूप की पूजा कैसे की जाय।

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः ।
त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चरत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

वैदिकः—चारों वेदों के अनुसार; तान्त्रिकः—व्यावहारिक व्याख्यात्मक ग्रंथों के अनुसार; मिश्रः—मिश्रित; इति—इस प्रकार; मे—मेरा; त्रि-विधः—तीन प्रकार के; मखः—यज्ञ; त्रयाणाम्—तीनों के; ईप्सितेन—जो सर्वाधिक उपयुक्त जान पड़े, उससे; एव—निश्चय ही; विधिना—विधि से; माम्—मुझको; समर्चरत्—ठीक से पूजे।

मनुष्य को चाहिए कि वैदिक, तांत्रिक अथवा मिश्रित, इन तीन विधियों में से, जिनसे मैं यज्ञ प्राप्त करता हूँ, किसी एक को चुन कर सावधानीपूर्वक मेरी पूजा करे।

तात्पर्य : वैदिक चारों वेदों तथा उपवेदों से मंत्रों द्वारा सम्पन्न यज्ञ का द्योतक है। *तान्त्रिक पञ्चरात्र* तथा *गौतमीय तन्त्र* जैसे ग्रंथों का द्योतन करता है। *मिश्रः* इन दोनों प्रकार के ग्रंथों के उपयोग का द्योतक है। स्मरण रहे कि विशद वैदिक यज्ञों की ऊपरी नकल से जीवन की वास्तविक सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। मनुष्य को भगवान् द्वारा बतलाई विधि से यज्ञ करना चाहिए—जो विधि इस युग के लिए संस्तुत की गई है, वह है उनके पवित्र नाम का कीर्तन—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।

यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः ।
यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; स्व—अपनी योग्यता के अनुसार; निगमेन—वेदों के द्वारा; उक्तम्—आदेश दिया गया; द्विजत्वम्—द्विज बनने का पद; प्राप्य—प्राप्त करके; पूरुषः—व्यक्ति; यथा—जिस तरह; यजेत—पूजा करे; माम्—मुझको; भक्त्या—भक्ति से; श्रद्धया—श्रद्धा से; तत्—वह; निबोध—कृपया सुनें; मे—मुझसे।

अब तुम श्रद्धापूर्वक सुनो क्योंकि मैं बतला रहा हूँ कि किस तरह द्विज पद को प्राप्त व्यक्ति संबद्ध वैदिक संस्तुतियों द्वारा भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करे।

तात्पर्य : *स्व-निगमेन* शब्द सूचक है विशेष वैदिक आदेशों का जो वर्ण तथा आश्रम से संगत हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जाति के सदस्य गायत्री मंत्र की दीक्षा लेकर *द्विजत्वम्* प्राप्त करते हैं। प्रथा के अनुसार पूर्ण योग्य ब्राह्मण-बालकों को आठ वर्षों में, क्षत्रियों को ग्यारह वर्षों में तथा वैश्यों को बारह वर्षों में दीक्षा दी जा सकती है बशर्ते कि उचित शर्तें पूरी होती हों। द्विजत्व प्राप्त करने के बाद मनुष्य को अर्चाविग्रह रूप में भगवान् की पूजा करनी चाहिए जैसाकि स्वयं भगवान् बतलायेंगे।

अर्चायां स्थण्डिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाप्सु हृदि द्विजः ।
द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत्स्वगुरुं माममायया ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

अर्चायाम्—अर्चाविग्रह के रूप में भीतर; स्थण्डिले—पृथ्वी पर; अग्नौ—अग्नि में; वा—अथवा; सूर्ये—सूर्य में; वा—अथवा; अप्सु—जल में; हृदि—हृदय में; द्विजः—ब्राह्मण; द्रव्येण—विविध साज-सामग्री से; भक्ति-युक्तः—भक्ति से युक्त; अर्चेत्—पूजा करे; स्व-गुरुम्—अपने आराध्य स्वामी की; माम्—मुझको; अमायया—किसी संशय से रहित होकर।

द्विज को चाहिए कि वह अपने आराध्य देव मुझको बिना द्वैत के मेरे अर्चाविग्रह पर प्रेममयी भक्ति के साथ उपयुक्त साज-सामग्री प्रदान करके पूजे अथवा पृथ्वी पर, अग्नि में, सूर्य में, जल

में या पूजक के ही हृदय में प्रकट होने वाले मेरे रूप को पूजे ।

पूर्व स्नानं प्रकुर्वीत धौतदन्तोऽङ्गशुद्धये ।
उभयैरपि च स्नानं मन्त्रैर्मृद्ग्रहणादिना ॥ १० ॥

शब्दार्थ

पूर्वम्—पहले; स्नानम्—स्नान; प्रकुर्वीत—सम्पन्न करे; धौत—धोकर; दन्तः—दाँत; अङ्ग—शरीर की; शुद्धये—शुद्धि के लिए; उभयैः—दोनों प्रकार की; अपि च—भी; स्नानम्—स्नान; मन्त्रैः—मंत्रों से; मृत्-ग्रहण-आदिना—मिट्टी इत्यादि पोत कर ।

मनुष्य को चाहिए कि पहले वह अपने दाँत साफ करके तथा स्नान करके अपना शरीर शुद्ध बनाये। तत्पश्चात् वह शरीर को मिट्टी से मल कर तथा वैदिक एवं तांत्रिक मंत्रों के उच्चारण द्वारा दुबारा शुद्ध करे।

सन्ध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाचोदितानि मे ।
पूजां तैः कल्पयेत्सम्यक्सङ्कल्पः कर्मपावनीम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सन्ध्या—दिन की तीन सन्धियों (प्रातः, दोपहर तथा सूर्यास्त) पर; उपास्ति—पूजा करे (गायत्री मंत्र का उच्चारण करके); आदि—इत्यादि; कर्माणि—नियत कार्य; वेदेन—वेदों द्वारा; आचोदितानि—संस्तुत; मे—मेरी; पूजाम्—पूजा; तैः—इन कार्यों से; कल्पयेत्—सम्पन्न करे; सम्यक्-सङ्कल्पः—दृढ़ संकल्प वाला; कर्म—कर्मफल; पावनीम्—समूल नष्ट कर देने वाला ।

मनुष्य को चाहिए कि वह मन को मुझ पर स्थिर करके, अपने विविध नियत कार्यों द्वारा, यथा दिन में तीन संधियों पर गायत्री मंत्र का उच्चारण करके, मेरी पूजा करे। वेदों द्वारा ऐसे कार्यों का आदेश है और इनसे पूजा करने वाला अपने कर्मफलों से शुद्ध हो जाता है।

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

शैली—पत्थर की बनी; दारु-मयी—काष्ठ की बनी; लौही—धातु की बनी; लेप्या—मिट्टी, चन्दन आदि से बना; लेख्या—चित्रित; च—तथा; सैकती—बालू की बनी; मनः-मयी—मन में विचारी गई; मणि-मयी—मणियों से बनी; प्रतिमा—अर्चाविग्रह; अष्ट-विधा—आठ प्रकार की; स्मृता—ऐसा स्मरण किया जाता है।

भगवान् के अर्चाविग्रह रूप का आठ प्रकारों में—पत्थर, काष्ठ, धातु, मिट्टी, चित्र, बालू, मन या रत्न में—प्रकट होना बतलाया जाता है।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि कतिपय अर्चाविग्रह रूप, यथा बालू से बने रूप, अल्पकाल के लिए पूजा करने वाले की निजी इच्छा की पूर्ति करने के लिए होते हैं। फिर भी जो लोग

शुद्ध भगवत्प्रेम पाना चाहते हैं, उन्हें अर्चाविग्रह के स्थायी रूप (उदाहरण के लिए, संगमरमर, स्वर्ण या पीतल से बने रूप) की पूजा करनी चाहिए और उन्हें यह पूजा करते रहना चाहिए। कृष्णभावनामृत में भगवान् की पूजा की उपेक्षा करने के लिए कोई गुंजाईश ही नहीं मिलती।

चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम् ।

उद्धासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

चला—चल; अचला—अचल; इति—इस प्रकार; द्वि-विधा—दो प्रकार की; प्रतिष्ठा—स्थापना; जीव-मन्दिरम्—समस्त जीवों के आश्रय अर्चाविग्रह का; उद्धास—विसर्जन; आवाहने—तथा आवाहन; न स्तः—नहीं हैं; स्थिरायाम्—स्थायी रूप से स्थापित अर्चाविग्रह के लिए; उद्धव—हे उद्धव; अर्चने—पूजा में।

समस्त जीवों के शरण रूप भगवान् का अर्चाविग्रह दो प्रकारों से स्थापित किया जा सकता है—अस्थायी रूप से अथवा स्थायी रूप से। किन्तु हे उद्धव, स्थायी अर्चाविग्रह का आवाहन हो चुकने पर उसका विसर्जन नहीं किया जा सकता।

तात्पर्य : भगवान् के भक्त अपने को भगवान् का नित्य दास मानते हैं। वे अर्चाविग्रह को साक्षात् भगवान् मान कर अर्चाविग्रह की स्थायी स्थापना करते हैं और निरन्तर पूजा करते हैं। किन्तु निर्विशेषवादीजन भगवान् के नित्य रूप को क्षणिक मोह की अभिव्यक्ति मानते हैं। वस्तुतः वे अर्चाविग्रह रूप को ईश्वर बनने की दिशा में साधन मात्र मानते हैं। भौतिकतावादी व्यक्ति भगवान् को अपना बैरी समझते हैं इसलिए धार्मिक उत्सवों के लिए अस्थायी व्यवस्था करते हैं। पूजा की यह क्षणिक पूजा-विधि उन लोगों को भाती है, जो अपने स्वार्थों के लिए भगवान् का दुरुपयोग करना चाहते हैं किन्तु जो कृष्ण-भक्त हैं, वे भगवान् की पूजा में लगे रहते हैं। वे निरन्तर पूजने के लिए स्थायी अर्चाविग्रह स्थापित करते हैं।

अस्थिरायां विकल्पः स्यात्स्थण्डिले तु भवेद्द्वयम् ।

स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

अस्थिरायाम्—अस्थायी अर्चाविग्रह के प्रसंग में; विकल्पः—विकल्प (कि अर्चाविग्रह का आवाहन करना तथा विसर्जन करना है); स्यात्—है; स्थण्डिले—भूमि पर बने अर्चाविग्रह के प्रसंग में; तु—लेकिन; भवेत्—होते हैं; द्वयम्—ये दो अनुष्ठान; स्नपनम्—स्नान; तु—लेकिन; अविलेप्यायाम्—जब अर्चाविग्रह मिट्टी (चित्र या काष्ठ) से नहीं बनाया जाता; अन्यत्र—अन्य दशाओं में; परिमार्जनम्—पूर्ण सफाई किन्तु जल के बिना।

जो अर्चाविग्रह अस्थायी रूप से स्थापित किया जाता है उसका आवाहन और विसर्जन

विकल्प रूप में किया जा सकता है किन्तु ये दोनों अनुष्ठान तब अवश्य करने चाहिए जब अर्चाविग्रह को भूमि पर अंकित किया गया हो। अर्चाविग्रह को जल से स्नान कराना चाहिए यदि वह मिट्टी, रंजक या काष्ठ से न बनाया गया हो। ऐसा होने पर जल के बिना ही ठीक से सफाई करनी चाहिए।

तात्पर्य : विभिन्न श्रेणियों के भक्तगण अपनी अपनी श्रद्धा की विभिन्न स्थितियों के अनुसार भगवान् के अर्चाविग्रह की पूजा करते हैं। भगवान् कृष्ण का प्रगत भक्त भगवान् से अपने नित्य प्रेमपूर्ण सम्बन्ध को समझता है; वह अर्चाविग्रह को साक्षात् भगवान् मानता है और प्रेममयी सेवकाई के अनुसार अर्चाविग्रह से शाश्वत सम्बन्ध स्थापित करता है। भगवान् कृष्ण को सच्चिदानन्द रूप समझते हुए श्रद्धालु भक्त उदाहरण के तौर पर, पत्थर, काष्ठ या संगमरमर से बनी भगवान् की मूर्ति स्थापित करके, अर्चाविग्रह की पूजा का स्थायी प्रबन्ध करता है।

शालग्राम शिला को बिना किसी औपचारिक उत्सव के स्वतः प्रतिष्ठापित मान लिया जाता है, इसलिए अर्चाविग्रह को मंत्रों द्वारा आवाहन या विसर्जन करने की मनाही है। किन्तु यदि कोई अर्चाविग्रह को पवित्र भूमि पर रंजित करता है या बालू की प्रतिमा के रूप में बनाता है, तो अर्चाविग्रह का आवाहन मंत्रों द्वारा किया जाता है। फिर अर्चाविग्रह से बाह्य रूप त्यागने के लिए अनुरोध किया जाता है क्योंकि यह बाह्य रूप शीघ्र ही प्राकृतिक तत्त्वों द्वारा विनष्ट हो जायेगा।

सामान्य सिद्धान्त यह है कि शुद्ध भक्त अर्चाविग्रह के साथ अपने सम्बन्ध को शाश्वत मानता है। जो व्यक्ति प्रेमाभक्ति में जितना ही अर्चाविग्रह के शरणागत होता है, वह भगवान् को उतना ही समझ सकता है। भगवान् कृष्ण एक पुरुष हैं किन्तु वे परम पुरुष हैं जिनकी भावनाएँ अद्वितीय होती हैं। भगवान् के अर्चाविग्रह रूप की भक्ति करके भगवान् को आसानी से प्रसन्न किया जा सकता है और भगवान् को प्रसन्न करने से मनुष्य जीवन के मिशन में क्रमशः उन्नति कर सकता है और अन्त में भगवान् के पास वापस जा सकता है जहाँ अर्चाविग्रह भक्त के सम्मुख प्रकट होता है और अपने निजी आवास में भक्त का स्वागत करता है, जो सारे संसार में भगवद्धाम के नाम से जाना जाता है।

द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः ।

भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

द्रव्यैः—साज-सामग्री से; प्रसिद्धैः—सर्वोत्तम; मत्-यागः—मेरी पूजा; प्रतिमा-आदिषु—विभिन्न अर्चाविग्रह रूपों में; अमायिनः—इच्छारहित; भक्तस्य—भक्त का; च—तथा; यथा-लब्धैः—जो भी साज-सामग्री सरलता से प्राप्त की जा सकती है; हृदि—हृदय में; भावेन—मानसिक संकल्पना द्वारा; च—तथा; एव हि—निश्चय ही।

मनुष्य को चाहिए कि उत्तम से उत्तम साज-सामग्री भेंट करके मेरे अर्चाविग्रह रूप में मेरी पूजा करे। किन्तु भौतिक इच्छा से पूर्णतया मुक्त भक्त मेरी पूजा, जो भी वस्तु मिल सके उसी से करे, यहाँ तक कि वह अपने हृदय के भीतर मानसिक साज-सामग्री से भी मेरी पूजा कर सकता है।

तात्पर्य : आज भी जो भक्त भौतिक इच्छा द्वारा सताया हुआ होता है, वह जगत को इन्द्रियतृप्ति की वस्तु के रूप में देखता है। ऐसा नवदीक्षित भक्त भगवान् के परम पद को गलत समझ सकता है, यहाँ तक कि वह भगवान् को ही अपने भोग की वस्तु मान सकता है। इसलिए नवदीक्षित को चाहिए कि देवता को ऐश्वर्यपूर्ण साज-सामग्री भेंट करे जिससे वह निरन्तर स्मरण रख सके कि अर्चाविग्रह परम भोक्ता है और नवदीक्षित तो मात्र पूजक होता है और अर्चाविग्रह के आनन्द के लिए है। इसके विपरीत कृष्णभावनामृत में स्थिर हुआ प्रगत भक्त यह कभी नहीं भूलता कि परमेश्वर हर वस्तु का वास्तविक भोक्ता तथा नियन्ता है। शुद्ध भक्त जो भी साज-सामग्री आसानी से मिल सकती है, उसी के साथ भगवान् को अपने शुद्ध प्रेम की भेंट चढ़ाता है। कृष्णभावनाभावित भक्त कभी भी कृष्ण-भक्ति में विचलित नहीं होता और वह सादी से सादी भेंट द्वारा भी भगवान् को पूरी तरह तुष्ट करता है।

स्नानालङ्करणं प्रेष्ठमर्चायामेव तूद्धव ।

स्थण्डिले तत्त्वविन्यासो वह्निवाज्यप्लुतं हविः ॥ १६ ॥

सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः ।

श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

स्नान—स्नान; अलङ्करणम्—तथा वस्त्रों एवं गहनों से सजाना; प्रेष्ठम्—पसन्द किया जाता है; अर्चायाम्—अर्चाविग्रह रूप के लिए; एव—निश्चय ही; तु—तथा; उद्धव—हे उद्धव; स्थण्डिले—भूमि पर अंकित अर्चाविग्रह के लिए; तत्त्व-विन्यासः—मंत्रोच्चार द्वारा अर्चाविग्रह के विविध अंगों के भीतर भगवान् के अंशों तथा शक्तियों की स्थापना; वह्नौ—यज्ञ की अग्नि के लिए; आज्य—घी में; प्लुतम्—डूबा; हविः—तिल, जौ, गुड़ आदि की आहुति; सूर्ये—सूर्य के लिए; च—तथा; अभ्यर्हणम्—बारह आसनों का योग-ध्यान तथा अर्घ्य दान; प्रेष्ठम्—अत्यन्त प्रिय; सलिले—जल के लिए; सलिल-आदिभिः—जल इत्यादि की भेंटों से; श्रद्धया—श्रद्धा के साथ; उपाहृतम्—भेंट किया; प्रेष्ठम्—अत्यन्त प्रिय; भक्तेन—भक्त द्वारा; मम—मेरा; वारि—जल; अपि—भी।

हे उद्धव, मन्दिर के अर्चाविग्रह की पूजा में स्नान कराना तथा सजाना सर्वाधिक मनोहारी भेटें हैं। पवित्र भूमि पर अंकित अर्चाविग्रह के लिए *तत्त्वविन्यास* ही सर्वाधिक रुचिकर विधि है। तिल तथा जौ को घी में सिक्त करके जो आहुतियाँ दी जाती हैं, उन्हें यज्ञ की अग्नि भेंट से अधिक अच्छा माना जाता है, जबकि उपस्थान तथा अर्घ्य से युक्त पूजा सूर्य के लिए अच्छी मानी जाती है। मनुष्य को चाहिए कि जल को ही अर्पित करके जल के रूप में मेरी पूजा करे। वस्तुतः मेरे भक्त द्वारा श्रद्धापूर्वक मुझे जो कुछ अर्पित किया जाता है—भले ही वह थोड़ा-सा जल ही क्यों न हो—मुझे अत्यन्त प्रिय है।

तात्पर्य : भगवान् सर्वत्र विद्यमान रहते हैं तथा वैदिक संस्कृति में भगवान् के विविध रूपों में पूजा करने के लिए विविध कर्मकाण्ड हैं। मुख्य बात तो पूजा करने वाले की श्रद्धा तथा भक्ति है, जिसके बिना सब व्यर्थ है जैसाकि अगले श्लोक में भगवान् द्वारा बतलाया गया है।

भूर्यप्यभक्तोपाहृतं न मे तोषाय कल्पते ।

गन्धो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

भूरि—ऐश्वर्यवान्; अपि—भी; अभक्त—अभक्त द्वारा; उपाहृतम्—भेंट किया; न—नहीं; मे—मेरा; तोषाय—सन्तोष; कल्पते—उत्पन्न करते हैं; गन्धः—सुगन्धि; धूपः—धूप; सुमनसः—फूल; दीपः—दीपक; अन्न-आद्यम्—भोजन सामग्री; च—तथा; किम् पुनः—क्या कहा जाय।

बड़ी से बड़ी ऐश्वर्यपूर्ण भेंट भी मुझे तुष्ट नहीं कर पाती यदि वे अभक्तों द्वारा प्रदान की जायँ। किन्तु मैं अपने प्रेमी भक्तों द्वारा प्रदत्त तुच्छ से तुच्छ भेंट से भी प्रसन्न हो जाता हूँ और जब सुगंधित तेल, अगुरु, फूल तथा स्वादिष्ट भोजन की उत्तम भेंट प्रेमपूर्वक चढ़ाई जाती हैं, तो मैं निश्चय ही सर्वाधिक प्रसन्न होता हूँ।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में भगवान् कह चुके हैं कि प्रेम तथा भक्तिपूर्वक चढ़ाया गया थोड़ा-सा जल भी उन्हें परम आनन्द प्रदान करने वाला है। इसलिए *किं पुनः* शब्द भगवान् के पूर्ण आनन्द के सूचक हैं जब प्रेम तथा भक्ति के साथ बड़ी-से-बड़ी उपयुक्त भेंट चढ़ाई जाती है। किन्तु अभक्त द्वारा चढ़ाई गई बड़ी-से-बड़ी भेंट भगवान् को प्रसन्न नहीं कर पाती। जैसाकि श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि अर्चाविग्रह के पूजा विषयक विधि-विधान तथा अर्चाविग्रह के प्रति किये गये अपराधों की सूची लोगों को सहायता पहुँचाने के लिए है ताकि वे भगवान् के अर्चाविग्रह रूप के प्रति अनादर या उपेक्षा

भाव दिखलाने से बच सकें। वस्तुतः सारे अपराध भगवान् को स्वामी के रूप में न मानने पर और इस तरह उनके आदेशों का अनादर तथा उल्लंघन करने पर आधारित हैं। चूँकि अर्चाविग्रह की आदरपूर्वक पूजा करनी चाहिए, इसलिए अर्चाविग्रह को प्रेमपूर्वक ऐश्वर्यपूर्ण भेंटें चढ़ानी चाहिए क्योंकि ऐसी भेंटों से पूजा करने वाले की आदरणीयता बढ़ती है तथा उसकी पूजा में अपराधों से बचने में सहायता मिलती है।

शुचिः सम्भृतसम्भारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः ।

आसीनः प्राग्दग्वाचेदर्चायां त्वथ सम्मुखः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

शुचिः—पवित्र; सम्भृत—एकत्र करके; सम्भारः—साज-सामग्री; प्राक्—उनके सिरे पूर्व की ओर निर्देशित; दर्भैः—कुश द्वारा; कल्पित—व्यवस्थित करके; आसनः—अपने आसन पर; आसीनः—बैठा हुआ; प्राक्—पूर्वाभिमुख; उदक्—उत्तराभिमुख; वा—अथवा; अर्चेत्—पूजा करे; अर्चायाम्—अर्चाविग्रह का; तु—लेकिन; अथ—अथवा; सम्मुखः—सामने।

अपने को स्वच्छ करके तथा सारी सामग्री एकत्र करके पूजक को चाहिए कि अपना आसन पूर्वाभिमुख कुश से बनाये। तब वह पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके बैठे अन्यथा यदि अर्चाविग्रह किसी स्थान पर स्थिर है, तो अर्चाविग्रह के समक्ष बैठे।

तात्पर्य : संभृतसम्भार शब्द का अर्थ है कि अर्चाविग्रह की पूजा शुरू करने के पूर्व सारी आवश्यक पूजा-सामग्री निकट ही रख ले। इस तरह विभिन्न वस्तुओं को ढूँढने के लिए उसे बारम्बार उठना नहीं पड़ेगा। यदि अर्चाविग्रह को स्थायी रूप से स्थापित कर दिया गया हो, तो उसे चाहिए कि अर्चाविग्रह की ओर मुँह करके बैठे।

कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चा पाणिनामृजेत् ।

कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

कृत-न्यासः—अपने शरीर को पवित्र कर चुकने पर (विभिन्न अंगों का स्पर्श करके तथा उपयुक्त मंत्रों का उच्चारण करके भगवान् के संगत स्वरूप का ध्यान करते हुए); कृत-न्यासाम्—जिस अर्चाविग्रह पर यही विधि अपनाई गई हो; मत्-अर्चाम्—मेरा अर्चाविग्रह रूप; पाणिना—हाथ से; आमृजेत्—साफ करे (पुरानी भेंट के जूठन को हटाकर); कलशम्—शुभ वस्तुओं से भरे पात्र को; प्रोक्षणीयम्—छिड़कने के लिए जल से भरा पात्र; च—तथा; यथा-वत्—उपयुक्त रीति से; उपसाधयेत्—तैयार करे।

भक्त को चाहिए कि अपने शरीर के विभिन्न अंगों का स्पर्श करके तथा मंत्रोच्चारण करते हुए उन्हें पवित्र बनाये। उसे मेरे अर्चाविग्रह रूप के साथ भी ऐसा ही करना चाहिए और तब उसे

अपने हाथों से अर्चाविग्रह पर चढ़े पुराने फूलों तथा अन्य भेटों को हटाना चाहिए। उसे पवित्र कलश (पात्र) तथा छिड़कने के लिए जल से भरा पात्र भी उचित ढंग से तैयार करना चाहिए।

तात्पर्य : यहाँ पर वर्णित पूजा-विधि को शुरू करने के पूर्व मनुष्य को चाहिए कि अपने गुरु, अर्चाविग्रह तथा अन्य पूज्य पुरुषों को नमस्कार करे।

तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च ।

प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तत्—छिड़कने के उस पात्र के; अद्भिः—जल से; देव-यजनम्—स्थान जहाँ देवता की पूजा की जाती है; द्रव्याणि—साज-सामग्री; आत्मानम्—अपना शरीर; एव—निस्सन्देह; च—भी; प्रोक्ष्य—छिड़क कर; पात्राणि—पात्र, बर्तन; त्रीणि—तीन; अद्भिः—जल से; तैः तैः—जो उपलब्ध हों उन उनसे; द्रव्यैः—शुभ वस्तुओं से; च—तथा; साधयेत्—व्यवस्था करे।

तब उस प्रोक्षणीय पात्र से वह उस स्थान पर पानी छिड़के जहाँ अर्चाविग्रह की पूजा की जा रही हो, जहाँ भेंटे चढ़ाई जानी हों तथा साथ ही अपने शरीर पर भी पानी छिड़के। तत्पश्चात् वह जल से भरे तीन पात्रों को विविध शुभ वस्तुओं से सजाये।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी वैदिक साहित्य का सन्दर्भ देते हुए कहते हैं कि चरण पखारने के निमित्त जल में साँवा के दाने, दूर्वादल, विष्णुक्रान्त फूल तथा अन्य वस्तुएँ मिला लेनी चाहिए। अर्घ्य के लिए प्रयुक्त होने वाले जल में निम्नलिखित आठ चीजें होनी चाहिए—सुगन्धित तेल, फूल, जौ, अक्षत, कुश के अग्रभाग, तिल, सरसों तथा दूर्वादल। आचमन के लिए प्रयुक्त होने वाले जल में चमेली के फूल, पिसी लौंग तथा ककरोल की गिरियाँ होनी चाहिए।

पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि देशिकः ।

हृदा शीर्ष्णाथ शिखया गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

पाद्य—भगवान् के चरणों को पखारने के लिए जल; अर्घ्य—आदर-भाव से सत्कार हेतु भगवान् को अर्पित होने वाला जल; आचमनीय—तथा भगवान् का मुख धोने के लिए अर्पित किया गया जल; अर्थम्—के लिए रखा गया; त्रीणि—तीन; पात्राणि—पात्र; देशिकः—पूजा करने वाला; हृदा—हृदय मंत्र से; शीर्ष्णा—“सिर” मंत्र से; अथ—तथा; शिखया—शिखा मंत्र से; गायत्र्या—तथा गायत्री मंत्र से; च—भी; अभिमन्त्रयेत्—उच्चारण करते हुए शुद्ध करे।

तब पूजा करने वाला इन तीनों पात्रों को शुद्ध करे। उसे चाहिए कि भगवान् के चरण पखारने के लिए जल वाले पात्र को हृदयाय नमः मंत्र से पवित्र करे; अर्घ्य के लिए जल-पात्र को शिरसे स्वाहा मंत्र से तथा भगवान् का मुख धोने वाले जल के पात्र को शिखायै वषट् मंत्र का

उच्चारण करके पवित्र बनाये। साथ ही, इन तीनों पात्रों के लिए गायत्री मंत्र का भी उच्चारण करे।

पिण्डे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम ।

अण्वीं जीवकलां ध्यायेन्नादान्ते सिद्धभाविताम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

पिण्डे—शरीर के भीतर; वायु—वायु; अग्नि—तथा अग्नि द्वारा; संशुद्धे—पूर्णतया शुद्ध हुआ; हृत्—हृदय के; पद्म—कमल पर; स्थाम्—स्थित; पराम्—दिव्य रूप; मम—मेरा; अण्वीम्—अत्यन्त सूक्ष्म; जीव-कलाम्—भगवान् जिनसे सारे जीव विस्तार पाते हैं; ध्यायेत्—ध्यान करे; नाद-अन्ते—ॐ की ध्वनि के अन्त में; सिद्ध—सिद्ध मुनि; भाविताम्—अनुभवी।

पूजा करने वाले को चाहिए कि वह मेरे सूक्ष्म रूप को, जो अब वायु तथा अग्नि से पवित्र हुए पूजा करने वाले के शरीर के भीतर स्थित होता है, समस्त जीवों के स्रोत रूप में ध्यान करे। भगवान् का यह रूप पवित्र अक्षर ॐ की ध्वनि के अन्त में स्वरूपसिद्ध मुनियों द्वारा अनुभव किया जाता है।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार प्रणव या ॐकार के पाँच भाग हैं—अ, उ, म, अनुस्वार विन्दु तथा प्रतिध्वनि (नाद)। मुक्तात्माएँ इस नाद के अन्त में भगवान् का ध्यान करती हैं।

तयात्मभूतया पिण्डे व्याप्ते सम्पूज्य तन्मयः ।

आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्ताङ्गं मां प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

तया—ध्यान किये गये स्वरूप द्वारा; आत्म-भूतया—अपनी अनुभूति के अनुसार सोचा गया; पिण्डे—भौतिक शरीर में; व्याप्ते—व्याप्त; सम्पूज्य—उस रूप की भलीभाँति पूजा करके; तत्-मयः—उसकी उपस्थिति से युक्त; आवाह्य—आवाहन करके; अर्चा-आदिषु—पूजा किये जाने वाले विभिन्न अर्चाविग्रहों के भीतर; स्थाप्य—स्थापित करके; न्यस्त-अङ्गम्—उपयुक्त मंत्रों का उच्चारण करते हुए अर्चाविग्रह के विविध अंगों को छूकर; माम्—मुझको; प्रपूजयेत्—पूजा करे।

भक्त परमात्मा का ध्यान करता है, जिसकी उपस्थिति भक्त के शरीर को उसकी अनुभूति के अनुसार अधिक भर देती है। इस तरह भक्त अपनी सामर्थ्य-भर भगवान् की पूजा करता है और उन्हीं में लीन हो जाता है। अर्चाविग्रह के विभिन्न अंगों का स्पर्श करके तथा उपयुक्त मंत्रोच्चारण करके भक्त को चाहिए कि वह परमात्मा को अर्चाविग्रह रूप में आने के लिए आमंत्रित करे और तब वह मेरी पूजा करे।

तात्पर्य : भक्त का शरीर परमेश्वर से उसी तरह व्याप्त रहता है, जिस तरह कोई घर दीपक के प्रकाश से व्याप्त रहता है। जिस तरह अतिथि को गृह में प्रवेश करने के लिए मैत्रीपूर्वक संकेत किया

जाता है, उसी तरह मनुष्य अर्चाविग्रह के शरीर का स्पर्श करता है, उपयुक्त मंत्रोच्चार करता है तथा अर्चाविग्रह के स्वरूप में प्रवेश करने के लिए परमात्मा को आमंत्रित करता है। चूँकि अर्चाविग्रह तथा परमात्मा दोनों ही भगवान् हैं, अतएव वे अभिन्न हैं। भगवान् का एक रूप दूसरे में तत्काल प्रकट हो सकता है।

पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान्प्रकल्पयेत् ।

धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वासनं मम ॥ २५ ॥

पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ।

उभाभ्यां वेदतन्त्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

पाद्य—भगवान् के चरण पखारने के लिए जल; उपस्पर्श—भगवान् का मुख धोने के लिए जल; अर्हण—अर्घ्य के रूप में भेंट किया गया जल; आदीन्—तथा अन्य वस्तुएँ; उपचारान्—भेंटें; प्रकल्पयेत्—चढ़ाये; धर्म-आदिभिः—धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य के साकार रूपों के सहित; च—तथा; नवभिः—नौ (भगवान् की शक्तियों); कल्पयित्वा—कल्पना करके; आसनम्—आसन; मम—मेरा; पद्मम्—कमल; अष्ट-दलम्—आठ पंखड़ियों वाला; तत्र—उसमें; कर्णिका—कोश में; केसर—केसर से; उज्ज्वलम्—तेजवान्; उभाभ्याम्—दोनों साधनों से; वेद-तन्त्राभ्याम्—वेदों तथा तंत्रों से; मह्यम्—मुझको; तु—तथा; उभय—दोनों (भोग तथा मोक्ष) की; सिद्धये—प्राप्ति हेतु।

पूजा करने वाले को चाहिए कि सर्वप्रथम मेरे आसन को धर्म, ज्ञान, त्याग तथा ऐश्वर्य के साक्षात् देवों से तथा मेरी नौ आध्यात्मिक शक्तियों से अलंकृत होने की कल्पना करे। वह भगवान् के आसन को आठ पंखड़ियों वाले कमल के रूप में मान ले जो अपने कोश के भीतर केसर तन्तुओं से तेजवान है। तब वेदों तथा तंत्रों के नियमानुसार वह पाँव धोने का जल, मुख साफ करने का जल, अर्घ्य तथा पूजा की अन्य वस्तुएँ मुझे अर्पित करे। इस विधि से उसे भौतिक भोग तथा मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार, धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य—ये भगवान् के आसन के चार पैर हैं और दक्षिण-पूर्व आदि चार कोनों में स्थित हैं। अधर्म, अज्ञान, अनुरक्ति तथा कंजूसी—ये चार बीच के पाँव हैं, जो पूर्व आदि दिशाओं में स्थित हैं। भगवान् की नौ शक्तियों के नाम हैं—विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना तथा अनुग्रहा।

सुदर्शनं पाञ्चजन्यं गदासीषुधनुर्हलान् ।

मुषलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

सुदर्शनम्—भगवान् का चक्र; पाञ्चजन्यम्—भगवान् का शंख; गदा—उनकी गदा; असि—तलवार; इषु—तीर; धनुः—धनुष; हलान्—तथा हल; मुषलम्—मुषल हथियार; कौस्तुभम्—कौस्तुभ मणि; मालाम्—उनकी माला; श्रीवत्सम्—उनके वक्षस्थल पर सुशोभित श्रीवत्स; च—तथा; अनुपूजयेत्—एक के बाद एक पूजे।

मनुष्य को चाहिए कि भगवान् के सुदर्शन चक्र, उनके पाञ्चजन्य शंख, उनकी गदा, तलवार, धनुष, बाण तथा हल, उनके मूसल, उनकी कौस्तुभ मणि, उनकी फूलमाला तथा उनके वक्षस्थल के केश-गुच्छ श्रीवत्स की पूजा इसी क्रम से करे।

नन्दं सुनन्दं गरुडं प्रचण्डं चण्डं एव च ।

महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

नन्दम् सुनन्दम् गरुडम्—नन्द, सुनन्द तथा गरुड नामक; प्रचण्डम् चण्डम्—प्रचण्ड तथा चण्ड; एव—निस्सन्देह; च—भी; महा-बलम् बलम्—महाबल तथा बल; च—तथा; एव—निस्सन्देह; कुमुदम् कुमुद-ईक्षणम्—कुमुद तथा कुमुदेक्षण।

मनुष्य को चाहिए कि नन्द, सुनन्द, गरुड, प्रचण्ड तथा चण्ड, महाबल तथा बल एवं कुमुद तथा कुमुदेक्षण नामक भगवान् के संगियों की पूजा करे।

दुर्गा विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरुन्सुरान् ।

स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान्पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

दुर्गाम्—भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति; विनायकम्—आदि गणेश; व्यासम्—वेद के संग्राहक; विष्वक्सेनम्—विष्वक्सेन; गुरुन्—अपने गुरुओं; सुरान्—देवताओं; स्वे स्वे—अपने अपने; स्थाने—स्थान पर; तु—तथा; अभिमुखान्—अर्चाविग्रह की ओर मुख करके; पूजयेत्—पूजा करे; प्रोक्षण-आदिभिः—शुद्धि के लिए जल छिड़कने आदि की विविध क्रियाओं द्वारा।

मनुष्य को चाहिए कि वह प्रोक्षण इत्यादि भेंटों से दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वक्सेन, गुरुओं तथा विविध देवताओं की पूजा करे। इन सारे व्यक्तियों को भगवान् के अर्चाविग्रह की ओर मुख किए हुए अपने अपने स्थानों में होना चाहिए।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार इस श्लोक में जिन गणेश तथा दुर्गा का उल्लेख हुआ है, वे इस भौतिक जगत में उपस्थित व्यक्ति नहीं, प्रत्युत वैकुण्ठ में भगवान् के नित्य संगी हैं। इस जगत में शिव-पुत्र गणेश धन देने के लिए विख्यात हैं और शिव-पत्नी दुर्गा देवी भगवान् की बहिरंगा मायाशक्ति के रूप में प्रसिद्ध हैं। किन्तु इस श्लोक में वर्णित सारे व्यक्ति भगवान् के नित्यमुक्त संगी हैं, जो वैकुण्ठ में वास करते हैं। श्रील जीव गोस्वामी यह सिद्ध करने के लिए विविध वैदिक ग्रंथों से उद्धरण देते हैं कि दुर्गा नाम भगवान् की अन्तरंगा शक्ति को भी सूचित कर सकता है, जो भगवान् से

अभिन्न है। भगवान् की बहिरंगा या आच्छादक शक्ति इसी आदि दुर्गा से विस्तार पाती है। भौतिक जगत की दुर्गा महामाया कहलाती हैं और जीवों को मोहने का कार्य करती हैं। इसलिए भक्त को यहाँ पर वर्णित दुर्गा जिसका नाम माया भी है, की पूजा करने से दूषित हो जाने से डरना नहीं चाहिए, प्रत्युत भक्त को वैकुण्ठ में भगवान् के इन नित्य सेवकों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए।

चन्दनोशीरकपूरकुङ्कुमागुरुवासितैः ।
सलिलैः स्नापयेन्मन्त्रैर्नित्यदा विभवे सति ॥ ३० ॥
स्वर्णघर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ।
पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

चन्दन—चन्दन का लेप; उशीर—उशीर या खस; कपूर—कपूर; कुङ्कुम—सिंदुर; अगुरु—अगुरु से; वासितैः—सुगन्धित बनाया गया; सलिलैः—विभिन्न प्रकार के जल से; स्नापयेत्—अर्चाविग्रह को नहलाये; मन्त्रैः—मंत्रों से; नित्यदा—प्रतिदिन; विभवे—पूँजी; सति—हैं; स्वर्ण-घर्म-अनुवाकेन—स्वर्ण-धर्म नामक वेदों के अध्याय से; महा-पुरुष-विद्यया—महापुरुष नामक मंत्र द्वारा; पौरुषेण—पुरुष सूक्त द्वारा; अपि—भी; सूक्तेन—वैदिक स्तुति; सामभिः—सामवेद से गीतों द्वारा; राजन-आदिभिः—राजन नामक तथा अन्य।

पूजा करने वाले को चाहिए कि अपनी आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार प्रतिदिन अर्चाविग्रह को स्नान कराने के लिए चन्दन-लेप, उशीर, कपूर, कुंकुम तथा अगुरु से सुगन्धित किए गए जल का प्रयोग करे। उसे विविध वैदिक स्तुतियों का भी, यथा अनुवाक जो कि स्वर्ण-घर्म कहलाती है, महापुरुष विद्या, पुरुष सूक्त तथा सामवेद के विविध गीतों यथा राजन तथा रोहिण्य का भी उच्चारण करना चाहिए।

तात्पर्य : पुरुष सूक्त प्रार्थना ऋग्वेद में आई है और ॐ सहस्रशिरसा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् से शुरू होती है।

वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्त्रगन्धलेपनैः ।
अलङ्कुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

वस्त्र—कपड़े; उपवीत—ब्राह्मण का जनेऊ; आभरण—गहने; पत्र—तिलक से शरीर के विविध अंगों को सजाना; स्त्रक्—माला; गन्ध-लेपनैः—तथा सुगन्धित तेलों का लेपन; अलङ्कुर्वीत—अलंकृत करे; स-प्रेम—प्रेमपूर्वक; मत्-भक्तः—मेरा भक्त; माम्—मुझको; यथा उचितम्—जैसा आदेश हो।

तब मेरे भक्त को चाहिए कि वह मुझे वस्त्रों, जनेऊ, विविध आभूषणों, तिलक के चिन्ह तथा मालाओं से अच्छी तरह अलंकृत करे और मेरे शरीर पर सुगन्धित तेल का नियत विधि से

लेप करे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी *विष्णु धर्म उपपुराण* से महाराज अम्बरीष को दिये गये श्री विष्णु के उपदेश उद्धृत करते हैं, “अपने मन को पूरी तरह अर्चाविग्रह में लीन करते हुए, तुम अन्य सारा आश्रय छोड़ दो तथा अर्चाविग्रह को ही अपना घनिष्ठ हितैषी मानो। तुम्हें चाहिए कि मानसिक रूप से उनकी पूजा करो और चलते, खड़े होते, सोते तथा खाते समय भी उनका ध्यान करो। तुम्हें चाहिए कि अर्चाविग्रह को अपने सामने, पीछे, ऊपर, नीचे तथा दोनों ओर देखो। इस तरह तुम्हें मेरे अर्चाविग्रह रूप का निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिए।” *गौतमीय तन्त्र* में यह आदेश है कि भगवान् के अर्चाविग्रह को जनेऊ दिया जाय और यदि सम्भव हो, तो वह सोने का हो। *नृसिंह पुराण* में कहा गया है, “यदि कोई व्यक्ति भगवान् गोविन्द को पीला जनेऊ प्रदान करता है, जिसमें रेशम के तीन धागे होते हैं, तो वह वेदान्तमें पटु बन जाएगा।”

पाद्यमाचमनीयं च गन्धं सुमनसोऽक्षतान् ।

धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

पाद्यम्—पाँव धोने का जल; आचमनीयम्—मुँह धोने का जल; च—तथा; गन्धम्—सुगन्धि; सुमनसः—फूल; अक्षतान्—अखण्डित बीज (चावल); धूप—अगुरु; दीप—दीपक; उपहार्याणि—साज-सामग्री की वस्तुएँ; दद्यात्—प्रदान करे; मे—मुझको; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; अर्चकः—पूजा करने वाला।

पूजक को चाहिए कि वह मेरे पाँव तथा मुँह धोने के लिए जल, सुगन्धित तेल, फूल, अक्षत तथा इसी के साथ अगुरु, दीपक तथा अन्य भेंटें भी दे।

गुडपायससर्पीषि शष्कुल्यापूपमोदकान् ।

संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

गुड—गुड़; पायस—खीर; सर्पीषि—तथा घी; शष्कुली—चावल के आटे, चीनी तथा तिल से बनी और घी में तली गई पूड़ी; आपूप—मीठा व्यंजन; मोदकान्—लड्डू; संयाव—आटा, घी तथा दूध से बनी आयताकार रोटी जिस पर चीनी तथा मसाला चुपड़ा हो; दधि—दही; सूपान्—तरकारी का शोरवा; च—तथा; नैवेद्यम्—भोजन की भेंट; सति—यदि उसके पास पर्याप्त साधन हों; कल्पयेत्—भक्त व्यवस्था करे।

अपने साधनों के ही अन्तर्गत भक्त को चाहिए कि मुझे भेंट करने के लिए गुड़, खीर, घी, शष्कुली (पूड़ी), आपूप, मोदक, संयाव—दही, शोरवा तथा अन्य स्वादिष्ट भोजन भेंट करने के लिए व्यवस्था करे।

तात्पर्य : श्री हरिभक्ति विलास (आठवाँ विलास श्लोक १५२-१६४) को देख कर अर्चाविग्रह पूजा में उचित तथा अनुचित भोजन की भेंट चढ़ाने की विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

अभ्यङ्गेन्मर्दनादर्शदन्तधावाभिषेचनम् ।

अन्नाद्यगीतनृत्यानि पर्वणि स्युरुतान्वहम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

अभ्यङ्ग—उबटन से; उन्मर्दन—मालिश; आदर्श—दर्पण दिखाना; दन्त-धाव—दाँत साफ करना; अभिषेचनम्—स्नान; अन्न—बिना चबाये खाया जाने वाला भोजन; आद्य—चबाकर खाया जाने वाला भोजन; गीता—गाना; नृत्यानि—तथा नाच; पर्वणि—विशेष उत्सवों पर; स्युः—करे; उत—या फिर (यदि सम्भव हो तो); अनु-अहम्—प्रतिदिन।

विशेष अवसरों पर और यदि सम्भव हो तो नित्यप्रति अर्चाविग्रह को उबटन लगाया जाय, दर्पण दिखाया जाय, दाँत साफ करने के लिए नीम की दातून दी जाय, पाँच प्रकार के अमृत (पंचामृत) से नहलाया जाय, विविध उच्च कोटि के व्यंजन भेंट किये जायँ तथा उनका गायन और नृत्य से मनोरंजन किया जाय।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने अर्चापूजन की विधि का वर्णन इस प्रकार किया है : “सर्वप्रथम अर्चाविग्रह के दाँत साफ किये जाँय और उसके शरीर पर सुगन्धित तेल की मालिश की जाय तथा सिन्दूर, कपूर आदि मला जाय। तत्पश्चात् सुगन्धित जल तथा पञ्चामृत से स्नान कराया जाय। इसके बाद बहुमूल्य रेशमी वस्त्र तथा रत्नजटित आभूषण पहनाये जाँय; शरीर पर चन्दन का लेप किया जाय और तब माला तथा अन्य उपहार भेंट किये जाँय। इसके बाद अर्चाविग्रह के समक्ष दर्पण रखा जाय और तब सुगन्धित तेल, फूल, अगुरु, दीपक तथा मुँह को स्वच्छ करने के लिए सुगन्धित जल प्रदान किया जाय। इसके बाद स्वादिष्ट भोजन, सुगन्धित जल, पान, माला, आरती दीप, शय्या इत्यादि प्रदान किये जाँय। अर्चाविग्रह पर पंखा भी झला जाय और वाद्य-संगीत, नृत्य तथा गाना-बजाना भी हो। यह अर्चापूजन विशेष अवसरों पर, यथा धार्मिक अवकाशों पर किया जाय और यदि हो सके तो नित्य किया जाय।” श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार विशेष अर्चापूजन के लिए एकादशी की तिथि सर्वोपयुक्त है।

विधिना विहिते कुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः ।

अग्निमाधाय परितः समूहेत्पाणिनोदितम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

विधिना—शास्त्रोक्त विधि से; विहिते—निर्मित; कुण्डे—यज्ञशाला में; मेखला—कमर की पेटी; गर्त—यज्ञ का गड्ढा; वेदिभिः—तथा वेदी; अग्निम्—अग्नि; आधाय—स्थापित करके; परितः—चारों ओर; समूहेत्—बनाये; पाणिना—हाथों से; उदितम्—प्रज्वलित।

भक्त को चाहिए कि शास्त्रोक्ति विधि से तैयार की गई यज्ञशाला में अग्नि-यज्ञ करे जिसमें वह पवित्र पेटी (मेखला), यज्ञ-कुण्ड तथा वेदी का प्रयोग करे। यज्ञ-अग्नि जलाते समय भक्त को चाहिए कि अपने हाथों से चिनी गई लकड़ियों को प्रज्वलित करे।

परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि ।

प्रोक्षण्यासाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

परिस्तीर्य—(कुश) फैलाकर; अथ—तब; पर्युक्षेत्—जल का छिड़काव करे; अन्वाधाय—अन्वाधान (ओम् भूर्भुवः स्वः का उच्चारण करते हुए अग्नि में लकड़ी रखे) करते हुए; यथा-विधि—मानक संस्तुति के अनुसार; प्रोक्षण्या—आचमन पात्र में से जल द्वारा; आसाद्य—सजाकर के; द्रव्याणि—आहुति में डाले जाने वाले पदार्थ; प्रोक्ष्य—उन पर छिड़क कर; अग्नौ—अग्नि में; भावयेत—ध्यान करे; माम्—मेरा।

जमीन पर कुश फैलाकर तथा उस पर जल छिड़कने के बाद, नियत विधियों के अनुसार अन्वाधान किया जाय। तत्पश्चात् आहुति में डाले जाने वाली वस्तुओं को व्यवस्थित करे और उन्हें पात्र में से जल छिड़क कर पवित्र बनाये। इसके बाद पूजा करने वाला अग्नि के भीतर मेरा ध्यान करे।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार यज्ञ-अग्नि के भीतर परमात्मा रूप भगवान् का स्मरण किया जाय।

तप्तजाम्बूनदप्रख्यं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः ।

लसच्चतुर्भुजं शान्तं पद्मकिञ्जल्कवाससम् ॥ ३८ ॥

स्फुरत्किरीटकटक कटिसूत्रवराङ्गदम् ।

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ३९ ॥

ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषाभिघृतानि च ।

प्रास्याज्यभागावाधारौ दत्त्वा चाज्यप्लुतं हविः ॥ ४० ॥

जुहुयान्मूलमन्त्रेण षोडशर्चावदानतः ।

धर्मादिभ्यो यथान्यायं मन्त्रैः स्वष्टिकृतं बुधः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

तप्त—पिघला; जाम्बू-नद—स्वर्ण का; प्रख्यम्—रंग; शङ्ख—शंख; चक्र—चक्र; गदा—गदा; अम्बुजैः—तथा कमल के फूल से युक्त; लसत्—तेजवान; चतुः-भुजम्—चार भुजाओं वाले; शान्तम्—शान्त; पद्म—कमल के; किञ्जल्क—तन्तुओं के रंग

वाला; वाससम्—वस्त्र; स्फुरत्—चमकता हुआ; किरिट—मुकुट; कटक—कंगन; कति—सूत्र—पेटी, करधनी; वर—अङ्गदम्—बाँह का सुन्दर आभूषण, बाजूबन्द; श्री—वत्स—लक्ष्मीजी का प्रतीक; वक्षसम्—अपनी छाती पर; भ्राजत्—तेजवान; कौस्तुभम्—कौस्तुभ मणि; वन-मालिनम्—फूल की माला पहने; ध्यायन्—उनका ध्यान करते हुए; अभ्यर्च्य—उनकी पूजा करे; दारुणि—सूखी लकड़ी के खण्ड; हविषा—शुद्ध घृत से; अभिघृतानि—सिक्त; च—तथा; प्रास्य—अग्नि में डाल कर; आज्य—घी का; भागौ—दो भाग; आघारौ—आधार अनुष्ठान करते समय; दत्त्वा—प्रदान करके; च—तथा; आज्य—घी से; प्लुतम्—सिक्त; हविः—आहुति, सामग्री; जुहुयात्—अग्नि में डाले; मूल-मन्त्रेण—हर एक अर्चाविग्रह का नाम लेकर मूल मंत्र से; षोडश-ऋचा—पुरुष सूत्र के सोलह पंक्ति वाले श्लोक की स्तुति से; अवदानतः—हर पंक्ति के बाद आहुति डालते हुए; धर्म-आदिभ्यः—यमराज इत्यादि देवताओं को; यथा-न्यायम्—उचित क्रम से; मन्त्रैः—प्रत्येक देवता का नाम लेकर विशिष्ट मंत्र से; स्विष्टि-कृतम्—स्विष्टि नामक अनुष्ठान; बुधः—बुद्धिमान भक्त ।

बुद्धिमान भक्त को चाहिए कि वह भगवान् के उस रूप का ध्यान करे जिसका रंग पिघले सोने जैसा, जिसकी चारों भुजाएँ शंख-चक्र-गदा तथा कमल-फूल से शोभायमान हैं तथा जो सदैव शान्त रहता है और कमल के फूल के भीतर के तन्तुओं जैसा रंगीन वस्त्र पहने रहता है । उनका मुकुट, कंगन, करधनी तथा बाजूबन्द खूब चमकते रहते हैं । उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह, चमकीली कौस्तुभ मणि तथा जंगली फूलों की माला रहती है । तत्पश्चात् भक्त को घी में डूबी लकड़ियों को लेकर उन्हें अग्नि में डालते हुए भगवान् की पूजा करनी चाहिए । उसे आधार अनुष्ठान करना चाहिए जिसमें घी में सिक्त सारी आहुति-सामग्री अग्नि को अर्पित की जाती है । तत्पश्चात् उसे यमराज इत्यादि सोलह देवताओं को स्विष्टि कृत नामक आहुति देनी चाहिए जिसमें प्रत्येक देवता के मूल मंत्रों का तथा पुरुष सूक्त की सोलह पंक्तियों का उच्चारण किया जाता है । पुरुष सूक्त की प्रत्येक पंक्ति के बाद एक आहुति डाल कर, उसे प्रत्येक देवता का नाम लेकर विशेष मंत्र का उच्चारण करना चाहिए ।

अभ्यर्च्यार्थ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् ।

मूलमन्त्रं जपेद्ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

अभ्यर्च्य—पूजा करके; अथ—तब; नमस्कृत्य—नमस्कार करके; पार्षदेभ्यः—भगवान् के निजी संगियों को; बलिम्—भेंट; हरेत्—भेंट करे; मूल-मन्त्रम्—मूल मंत्र; जपेत्—चुपके से उच्चारण करे; ब्रह्म—परब्रह्म का; स्मरन्—स्मरण करते हुए; नारायण-आत्मकम्—भगवान् नारायण के रूप में ।

इस तरह यज्ञ-अग्नि में भगवान् की पूजा करके भक्त को चाहिए कि भगवान् के निजी संगियों को झुक कर नमस्कार करे और तब उन्हें उपहार भेंट करे । तब वह भगवान् के अर्चाविग्रह का मूल मंत्र मन ही मन जपे और भगवान् नारायण के रूप में परब्रह्म का स्मरण करे ।

दत्त्वाचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ।
मुखवासं सुरभिमत्ताम्बूलाद्यमथार्हयेत् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

दत्त्वा—प्रदान करके; आचमनम्—भगवान् का मुँह धोने का जल; उच्छेषम्—भोजन का जूठन; विष्वक्सेनाय—भगवान् विष्णु के निजी संगी विष्वक्सेन को; कल्पयेत्—दे; मुख-वासम्—मुख शुद्धि; सुरभि-मत्—सुगन्धित; ताम्बूल-आद्यम्—पान इत्यादि; अथ—तब; अर्हयेत्—भेंट करे।

वह एक बार फिर अर्चाविग्रह को मुख धोने के लिए जल दे और जो भोजन बचा हो उसे विष्वक्सेन को दे दे। तत्पश्चात् वह अर्चाविग्रह को सुगन्धित मुख शुद्धि एवं लगा हुआ पान का बीड़ा दे।

उपगायनगृणनृत्यन्कर्माण्यभिनयन्मम ।
मत्कथाः श्रावयन्शृण्वन्मुहूर्त क्षणिको भवेत् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

उपगायन्—गाते हुए; गृणन्—तेजी से उच्चारण करते हुए; नृत्यन्—नाचते हुए; कर्माणि—दिव्य कार्य; अभिनयन्—नाटक द्वारा अनुकरण करते हुए; मम—मेरा; मत्-कथाः—मेरे सम्बन्ध में कथाएँ; श्रावयन्—सुनाते हुए; शृण्वन्—स्वयं सुनते हुए; मुहूर्तम्—कुछ समय के लिए; क्षणिकः—उत्सव में लीन; भवेत्—हो जाय।

अन्यों के साथ गाते, जोर से कीर्तन करते तथा नाचते, मेरी दिव्य लीलाओं का अभिनय करते तथा मेरे विषय में कथाएँ सुनते तथा सुनाते हुए भक्त को चाहिए कि कुछ समय के लिए ऐसे उत्सव में लीन हो जाय।

तात्पर्य : भगवान् की नियमित पूजा में लगे भक्त को चाहिए कि कभी कभी भगवान् की लीलाओं के कीर्तन, श्रवण, नर्तन इत्यादि में आनन्दमग्न हो जाय। मुहूर्तम् शब्द सूचित करता है कि वह तथाकथित आनन्द के नाम पर अपने नैतिक कार्यों तथा भगवत्सेवा की उपेक्षा न करे। यद्यपि वह कीर्तन करने, सुनने तथा नाचने में आनन्दमग्न हो जाए, किन्तु वह भगवान् की नियमित सेवा की औपचारिकता को नहीं छोड़ सकता।

स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि ।
स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

स्तवैः—शास्त्रों से स्तुतियों द्वारा; उच्च-अवचैः—बड़ी तथा छोटी किस्मों के; स्तोत्रैः—मनुष्यों द्वारा रचित प्रार्थनाओं से; पौराणैः—पुराणों से; प्राकृतैः—सामान्य स्रोतों से; अपि—भी; स्तुत्वा—भगवान् की स्तुति करके; प्रसीद—कृपया अपनी दया दिखायें; भगवन्—हे प्रभु; इति—ऐसा कहते हुए; वन्देत—वन्दना करे; दण्ड-वत्—भूमि पर डंडे की तरह गिर कर।

भक्त को चाहिए कि पुराणों तथा अन्य प्राचीन शास्त्रों तथा सामान्य परम्परा के अनुसार सभी प्रकार की स्तुतियों तथा प्रार्थनाओं से भगवान् का सत्कार करे। उसे चाहिए कि, “हे प्रभु, मुझ पर दयालु हों” ऐसी प्रार्थना करते हुए पृथ्वी पर दण्ड की तरह गिर कर नमस्कार करे।

शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ।

प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

शिरः—अपना सिर; मत्-पादयोः—मेरे दोनों चरणों पर; कृत्वा—रख कर; बाहुभ्याम्—हाथों से; च—तथा; परस्परम्—एकसाथ (अर्चाविग्रह के दोनों पाँव पकड़ कर); प्रपन्नम्—शरणागत; पाहि—रक्षा करें; माम्—मुझको; ईश—हे प्रभु; भीतम्—डरा हुआ; मृत्यु—मृत्यु का; ग्रह—मुख; अर्णवात्—भौतिक सागर के।

अर्चाविग्रह के चरणों पर अपना सिर रख कर और तब भगवान् के समक्ष हाथ जोड़े खड़े होकर, उसे प्रार्थना करनी चाहिए “हे प्रभु, मैं आपकी शरण में हूँ। कृपा करके मेरी रक्षा करें। मैं इस भवसागर से अत्यन्त भयभीत हूँ क्योंकि मैं मृत्यु के मुख पर खड़ा हूँ।”

इति शेषां मया दत्तां शिरस्याधाय सादरम् ।

उद्गासयेच्चेदुद्गास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत्पुनः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार प्रार्थना करते हुए; शेषाम्—जूठन; मया—मेरे द्वारा; दत्ताम्—दिया हुआ; शिरसि—सिर पर; आधाय—रख कर; स-आदरम्—आदरपूर्वक; उद्गासयेत्—अर्चाविग्रह को विदा करे; चेत्—यदि; उद्गास्यम्—ऐसा करना ही हो; ज्योतिः—प्रकाश; ज्योतिषि—प्रकाश के भीतर; तत्—वह; पुनः—एक बार फिर।

इस प्रकार प्रार्थना करता हुआ भक्त अपने सिर पर मेरे द्वारा प्रदत्त उच्छिष्ट को आदर-सहित रखे। और यदि उस अर्चाविग्रह का पूजा के अन्त में विसर्जन करना हो, तो भक्त को अपने हृदय के भीतर के कमल के प्रकाश के अन्दर अर्चाविग्रह की उपस्थिति के प्रकाश को एक बार पुनः धारण करना चाहिए।

अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् ।

सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

अर्चा-आदिषु—अर्चाविग्रह में तथा भगवान् के अन्य स्वरूपों में; यदा—जब भी; यत्र—जिस भी रूप में; श्रद्धा—श्रद्धा उत्पन्न होती है; माम्—मुझको; तत्र—वहाँ; च—तथा; अर्चयेत्—पूजा करे; सर्व-भूतेषु—सारे उत्पन्न हुए जीवों के भीतर; आत्मनि—पृथक् रूप से, मेरे आदि रूप में; च—भी; सर्व-आत्मा—सबों की मूल आत्मा; अहम्—मैं; अवस्थितः—इस प्रकार स्थित।

जब भी कोई व्यक्ति मुझमें, चाहे मेरे अर्चाविग्रह रूप में या अन्य प्रामाणिक अभिव्यक्तियों के रूप में, श्रद्धा उत्पन्न कर लेता है, तो उसे उसी रूप में मेरी पूजा करनी चाहिए। मैं निश्चय ही, समस्त उत्पन्न जीवों के भीतर तथा पृथक् रूप से अपने आदि रूप में भी विद्यमान रहता हूँ, क्योंकि मैं सबों का परमात्मा हूँ।

तात्पर्य : श्री भगवान् की पूजा पूजक विशेष की श्रद्धा के अनुसार होती है। यहाँ पर अर्चा का विशेष उल्लेख हुआ है क्योंकि आध्यात्मिक उन्नति के लिए अर्चाविग्रह की पूजा अनिवार्य है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर उल्लेख करते हैं कि अनुभवहीन व्यक्ति यह सोच सकते हैं कि अर्चाविग्रह पूजक की इन्द्रियतृप्ति के निमित्त है क्योंकि अर्चाविग्रह संगमरमर अथवा पीतल जैसी बाह्य वस्तुओं से बना होता है। किन्तु प्रामाणिक मंत्रों के उच्चारण द्वारा अर्चाविग्रह की स्थापना करके मनुष्य भगवान् को अर्चारूप में प्रवेश करने के लिए आमंत्रित करता है। नियमित तथा श्रद्धायुक्त पूजा द्वारा मनुष्य धीरे धीरे समझने लगता है कि अर्चाविग्रह भगवान् से सर्वथा अभिन्न है। उस अवस्था में अर्चापूजन के बल पर मनुष्य द्वितीय श्रेणी की भक्ति प्राप्त करता है। इस अधिक विकसित अवस्था में मनुष्य अन्य भक्तों से संगति बढ़ाना चाहता है और ज्योंही वह वैष्णव समुदाय में ठीक से स्थापित हो जाता है, वह भौतिक जीवन का पूर्णतया त्याग कर देता है और क्रमशः कृष्णभावनामृत में पूर्ण बन जाता है।

एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिकतान्त्रिकैः ।

अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; क्रिया-योग—नियमित अर्चापूजन की; पथैः—विधियों द्वारा; पुमान्—पुरुष; वैदिक-तान्त्रिकैः—वेदों तथा तंत्रों में प्रस्तुत किया गया; अर्चन्—पूजना; उभयतः—इस जीवन तथा अगले जीवन में; सिद्धिम्—सिद्धि; मत्तः—मुझसे; विन्दति—प्राप्त करता है; अभीप्सिताम्—इच्छित।

वेदों तथा तंत्रों में संस्तुत विविध विधियों से मेरी पूजा करते हुए मनुष्य इस जीवन में तथा अगले जीवन में मुझसे इच्छित सिद्धि प्राप्त करेगा।

मदर्चा सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद्दृढम् ।
पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

मत्-अर्चाम्—मेरा अर्चाविग्रह रूप; सम्प्रतिष्ठाप्य—ठीक से स्थापित करके; मन्दिरम्—मन्दिर; कारयेत्—बनवाये; दृढम्—प्रबल; पुष्प-उद्यानानि—फूल के बगीचे; रम्याणि—सुन्दर; पूजा—नियमित नैतिक पूजा के लिए; यात्रा—विशेष उत्सव; उत्सव—तथा वार्षिक उत्सव; आश्रितान्—एक ओर करके ।

भक्त को चाहिए कि मजबूत मन्दिर बनवाकर उसी के साथ सुन्दर बगीचों से मेरे अर्चाविग्रह को अधिक पुष्टता से स्थापित करे। इन बगीचों को नित्यप्रति पूजा के लिए फूल प्रदान करने, विशेष अर्चाविग्रह जुलूसों और शुभ पर्वों के मनाने के लिए सुरक्षित रखना चाहिए।

तात्पर्य : धनी पुण्यात्मा व्यक्तियों को मन्दिर बनवाने तथा अर्चाविग्रह के मनोरंजन के लिए बगीचे बनवाने में लगाना चाहिए। दृढम् शब्द सूचित करता है कि निर्माण-कार्य के लिए ठोस सामग्री इस्तेमाल करनी चाहिए।

पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् ।
क्षेत्रापणपुरग्रामान्दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

पूजा-आदीनाम्—नियमित पूजा तथा विशेष त्यौहारों का; प्रवाह-अर्थम्—निरंतरता जारी रखने के लिए; महा-पर्वसु—शुभ अवसरों पर; अथ—तथा; अनु-अहम्—प्रतिदिन; क्षेत्र—भूमि; आपण—दूकानें; पुर—शहर; ग्रामान्—तथा गाँवों को; दत्त्वा—अर्चाविग्रह को भेंट रूप में देकर; मत्-सार्ष्टिताम्—मेरे तुल्य ऐश्वर्य; इयात्—प्राप्त करता है।

जो व्यक्ति अर्चाविग्रह पर भूमि, बाजार, शहर तथा गाँव की भेंट चढ़ाता है, जिससे कि अर्चाविग्रह की दैनिक पूजा तथा विशिष्ट उत्सव निरंतर चलते रहें, वह मेरे ही तुल्य ऐश्वर्य प्राप्त करेगा।

तात्पर्य : अर्चाविग्रह के नाम भूमिखंड दान में देने से ऐश्वर्यपूर्ण अर्चापूजन के लिए किराये से तथा कृषि उत्पादन से नियमित आय होती रहेगी। जो पूजक ऐसा करता है, वह निश्चय ही भगवान् जैसा ऐश्वर्य प्राप्त करेगा।

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्गना भुवनत्रयम् ।
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

प्रतिष्ठया—अर्चा की स्थापना कर लेने पर; सार्व-भौमम्—पूरी धरती पर सर्वोपरिता, एकछत्र राज्य; सद्गना—भगवान् के लिए मन्दिर बनवाकर; भुवन-त्रयम्—तीनों लोकों के ऊपर स्वामित्व; पूजा-आदिना—पूजा तथा अन्य सेवाओं द्वारा; ब्रह्म-लोकम्—ब्रह्माजी का लोक; त्रिभिः—तीन; मत्-साम्यताम्—मेरी बराबरी; इयात्—प्राप्त करता है।

भगवान् के अर्चाविग्रह की स्थापना करने से मनुष्य सारी पृथ्वी का राजा बन जाता है; भगवान् के लिए मन्दिर बनवाने से तीनों जगत्‌ओं का शासक बन जाता है; अर्चाविग्रह की पूजा तथा सेवा करने से वह ब्रह्मलोक को जाता है और इन तीनों कार्यों को करने से वह मुझ जैसा ही दिव्य स्वरूप प्राप्त करता है।

मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति ।

भक्तियोगं स लभत एवं यः पूजयेत माम् ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

माम्—मुझको; एव—निस्सन्देह; नैरपेक्ष्येण—निरपेक्ष भाव से; भक्ति-योगेन—भक्ति करने से; विन्दति—प्राप्त करता है; भक्ति-योगम्—भक्ति; सः—वह; लभते—प्राप्त करता है; एवम्—इस प्रकार; यः—जिसको; पूजयेत—पूजा करता है; माम्—मुझको।

किन्तु जो व्यक्ति कर्मफल पर विचार किये बिना, भक्ति में लगा रहता है, वह मुझे प्राप्त करता है। इस तरह जो कोई भी मेरे द्वारा वर्णित विधि के अनुसार मेरी पूजा करता है, वह अन्ततः मेरी शुद्ध भक्ति प्राप्त करेगा।

तात्पर्य : पिछले दो श्लोक भगवान् द्वारा इसलिए कहे गये थे ताकि सकाम फलों में रुचि रखने वाले लोग आकृष्ट हों और अब भगवान् की पूजा करने का चरम प्रयोजन बतलाया जा रहा है। जीवन का चरम लक्ष्य साक्षात् भगवान् कृष्ण हैं। ईश्वर के प्रति प्रेम ही सर्वोच्च आनन्द है यद्यपि सामान्य लोग इसे समझ नहीं पाते।

यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः ।

वृत्तिं स जायते विद्भुग्वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; स्व-दत्ताम्—अपने द्वारा दिया गया; परैः—अन्यों द्वारा; दत्ताम्—दिया हुआ; हरेत—ले लेता है; सुर-विप्रयोः—देवताओं या ब्राह्मणों से सम्बन्धित; वृत्तिम्—सम्पत्ति; सः—वह; जायते—उत्पन्न होता है; विद्-भुक्—मल खाने वाला कीट; वर्षाणाम्—वर्षों तक; अयुत—दस हजार; अयुतम्—गुणित दस हजार।

जो व्यक्ति देवताओं या ब्राह्मणों की सम्पत्ति चुराता है, चाहे वह उन्हें पहले उस व्यक्ति द्वारा दी गई हो या अन्य किसी के द्वारा, उसे एक करोड़ वर्षों तक मल के कीट के रूप में रहना पड़ता है।

कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ।

कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

कर्तुः—कर्ता का; च—तथा; सारथेः—सहायक का; हेतोः—प्रेरक का; अनुमोदितुः—अनुमोदन करने वाले का; एव च—भी; कर्मणाम्—कर्मों का; भागिनः—हिस्सेदार का; प्रेत्य—अगले जन्म में; भूयः—अधिक शोक के साथ; भूयसि—इस हद तक कि कर्म शोकमय हो; तत्—उसका (भोग करे); फलम्—परिणाम ।

न केवल चोरी करने वाला व्यक्ति अपितु उसकी सहायता करने वाला या जो अपराध के लिए प्रेरित करता है या मात्र अनुमोदन करता है, वह भी अगले जीवन में पापफल में भागी बनेगा। भागीदारी की कोटि के अनुसार ही, उन्हें उसी अनुपात में फल भोगना होगा।

भगवान् के या उनके अधिकारी प्रतिनिधियों की पूजा की वस्तु को किसी भी दशा में नहीं चुराना चाहिए।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध के “देवपूजा विषयक श्रीकृष्ण के आदेश” नामक सत्ताइसवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।